दादाजी का चिड़ियाघर

रस्किन बांड



दादाजी का चिड़ियाघर

रस्किन बांड

अनुवाद
ब्रह्मदेव

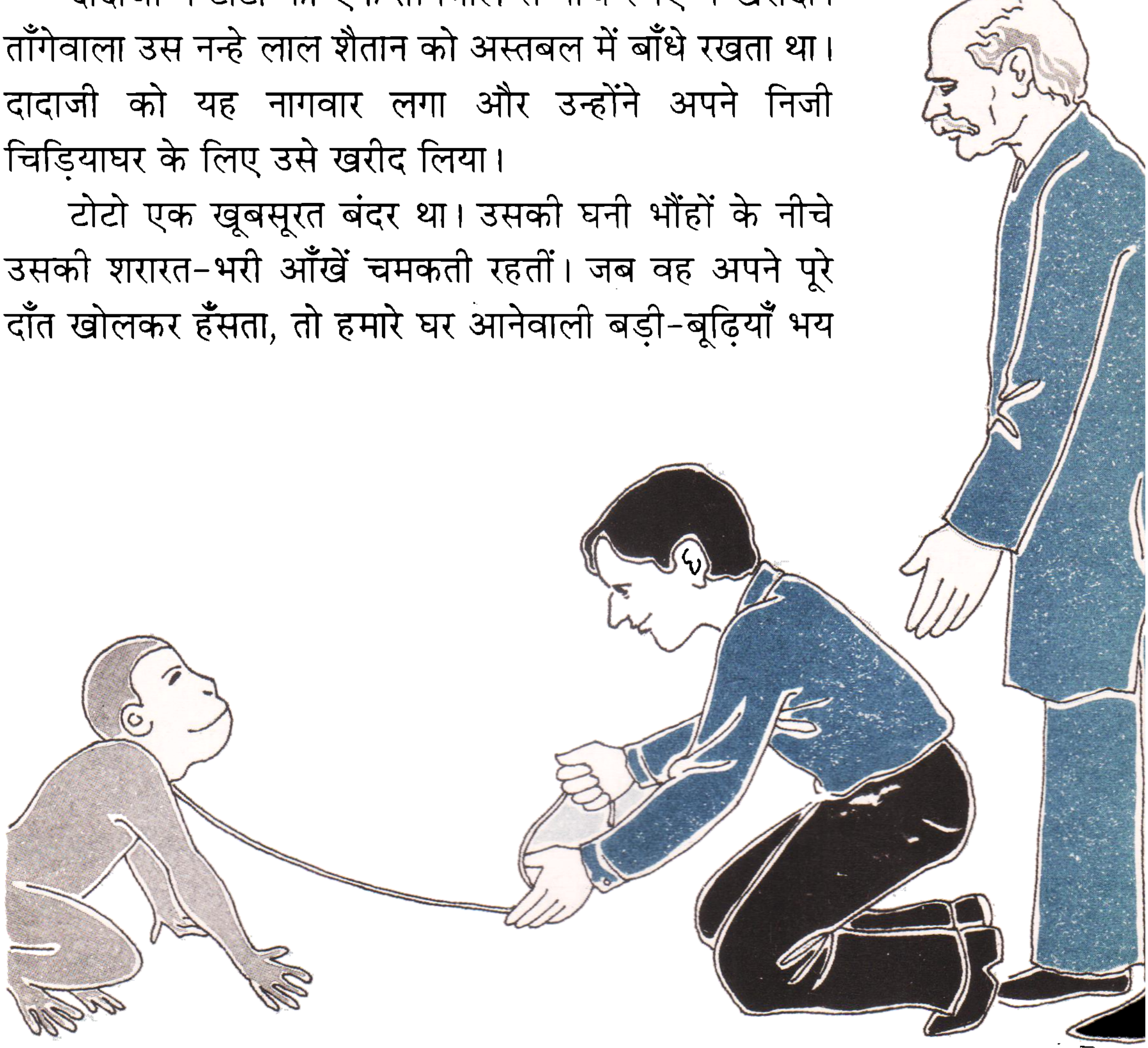
मेधा बुक्स
दिल्ली-110 032

अनुक्रम

टोटो की करामात

दादाजी ने टोटो को एक ताँगेवाले से पाँच रुपए में खरीदा। ताँगेवाला उस नन्हे लाल शैतान को अस्तबल में बाँधे रखता था। दादाजी को यह नागवार लगा और उन्होंने अपने निजी चिड़ियाघर के लिए उसे खरीद लिया।

टोटो एक खूबसूरत बंदर था। उसकी घनी भौंहों के नीचे उसकी शरारत-भरी आँखें चमकती रहतीं। जब वह अपने पूरे दाँत खोलकर हँसता, तो हमारे घर आनेवाली बड़ी-बूढ़ियाँ भय



के कारण सहम जातीं। उसके दोनों हाथ सूखे डंठल-से लगते थे, परंतु उसकी उँगलियाँ गजब की तेज थीं। उसकी दुम उसके तीसरे हाथ का काम देती। दुम के कारण उसकी सुंदरता में चार चाँद लग गए थे। मेरे दादाजी का तो दृढ़ विचार है कि दुम से किसी की भी सुंदरता में चार चाँद लग जाते हैं। दुम के सहारे वह टहनियों से लटक जाता और स्वादिष्ट खाने-पीने का सामान भी सरलता से झपट लेता है।

मजे की बात यह है कि जब भी दादाजी कोई नया पशु-पक्षी अपने चिड़ियाघर की शोभा बढ़ाने के लिए लाते, दादीजी देखते ही झुँझला उठती थीं। सो यह तय हुआ कि दादीजी को टोटो के विषय में केवल तब बताया जाए, जब वह कुछ अच्छे मूड में हों। मैंने और दादाजी ने उसे मेरे कमरे की आलमारी में लगे लकड़ी के एक खूँटे से अच्छी तरह बाँध दिया।

कुछ घंटों के पश्चात् जब दादाजी के साथ मैं टोटो को अलमारी से निकालने गया, तो देखा कि खूँटा नदारद था और आलमारी में मेरे स्कूल के कोट का एक-एक रेशा अलग हुआ पड़ा था। मैं दादाजी को देखने लगा, परन्तु उन्हें न गुस्सा चढ़ा और न चिंता हुई। वह तो मुझे खुश नजर आए। बोले, ''चालाक है। अगर समय मिलता, तो संभव है कोट के रेशों की रस्सी बनाकर खिड़की से नीचे उतर जाता!''

अब समस्या यह थी कि टोटो को कहाँ छिपाया जाए? दादाजी का चिड़ियाघर घर के पिछवाड़े नौकरों के कमरों की तरफ है। वहीं एक पिंजरे में चिड़ियाघर के सारे जानवर रखे जाते हैं। इस समय भी वहाँ एक कछुआ, एक जोड़ा खरगोश, एक लोमड़ी और एक बकरी थी। लेकिन टोटो ने वहाँ अपने साथियों का रात-भर सोना हराम कर दिया।

दादाजी को दूसरे दिन देहरादून छोड़कर सहारनपुर अपनी पेंशन लेने जाना था, सो उन्होंने टोटो को साथ ले जाना तय किया।

दादाजी के साथ जाने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला, लेकिन दादाजी ने लौटकर सारी बातें बताईं। टोटो को वे एक काले कैनवस के झोले में डालकर ले गए। झोले में नीचे कुछ सूखी घास रख दी गई थी। झोले के डोरे बँध जाने पर उसमें से निकलने की राह नहीं रही थी। टोटो अपना हाथ भी बाहर न निकाल सकता था। कैनवस का कपड़ा इतना

मोटा था कि दाँत से काटना उसके बस की बात न थी। बहरहाल उसने बाहर निकलने के प्रयत्न तो जारी रखे। इससे झोला कई बार लुढ़क गया और एक-आध बार हवा में भी उछला। इस कौतुक को देखने के लिए देहरादून के प्लेटफार्म पर अच्छी भीड़ जमा हो गई। सहारनपुर तक तो टोटो झोले में ही रहा, लेकिन दादाजी झोला नीचे रखकर जेब से जब अपना टिकट निकालने लगे तो अचानक टोटो ने अपना सिर झोले से बाहर निकाला और टिकट-चैकर की ओर देखकर अपनी खीसें निपोर दीं।

बेचारा टिकट-चैकर हड़बड़ा गया, लेकिन सँभलते हुए दादा जी से बोला, ''महाशय, आपके साथ एक कुत्ता भी है, इसलिए इसका टिकट भी लगेगा।''

दादाजी ने बहुतेरी कोशिश की यह समझाने की कि बंदर कुत्ता नहीं माना जा सकता और न बंदर कोई चौपाया ही है। अंत में दादाजी को टोटो के तीन रुपए देने ही पड़े। इस बात पर दादाजी टिकट-चैकर से कुछ झुँझला गए। उससे बदला लेने की नीयत से उन्होंने अपनी जेब में से अपना प्रिय एक नन्हा-सा कछुआ निकाला। उसे अपनी हथेली पर रखा और पूछा, ''इसके लिए कितने पैसे दूँ, जनाब, क्योंकि आप सब जानवरों का किराया वसूल कर रहे हैं?''

टिकट-चैकर ने उस नन्हे-से कछुए को गौर से देखा, अपनी उँगली से टटोला और अपने दाँत निकालता हुआ बोला, ''इसका कोई किराया नहीं लगेगा, यह कुत्ता तो नहीं है।''

अंत में जब दादाजी ने टोटो को भी चिड़ियाघर का एक सदस्य मान लिया तो उसे अस्तबल में गधे के साथ आराम की जगह मिली। गधे का नाम नाना था। पहली रात जब दादाजी टोटो को देखने गए कि वह आराम से है या नहीं, तो यह देखकर हैरान हुए कि नाना खूँटे से अपने-आपको दूर खींच रहा था। दादाजी ने नाना की पीठ पर एक धौल जमाई। तभी उन्होंने देखा कि टोटो ने अपने दाँत नाना के लंबे कान में धँसा रखे थे। टोटो और नाना की दोस्ती कभी नहीं हो पाई।

सर्दियों में टोटो के मजे रहते, क्योंकि दादाजी उसे रोज शाम को गर्म पानी से भरी एक बाल्टी नहाने को देते थे। गर्म पानी में पहले वह एक हाथ डालता, फिर एक पाँव,

और फिर दूसरा पाँव। यह चालाकी शायद उसने मुझे ऐसा करते हुए देखकर सीख ली थी। फिर धीरे-धीरे अपना पूरा शरीर पानी में डाल देता, सिर बाहर रखता। तब वह साबुन उठाकर अपने शरीर पर रगड़ना आरंभ कर देता। जब पानी ठंडा होने लगता तो वह अपने शरीर को अंदर रसोईघर में आग के पास सुखाता। अगर उसे नहाते हुए देखकर कोई मजाक में हँस देता तो वह नहाना बीच में ही बंद कर देता।

एक बार एक दिलचस्प घटना हो गई। रसोईघर में एक बड़ी केतली में पानी गर्म होने के लिए चूल्हे पर चढ़ा था। टोटो ने यह देखने के लिए कि उसमें क्या है, केतली का ढक्कन नीचे गिरा दिया। हाथ लगाकर जब उसने देखा कि पानी नहाने योग्य गर्म था तो वह उसके अंदर घुस गया। उसका सिर केतली से बाहर निकला हुआ था। कुछ पल तो उसे बड़ा मजा आया, लेकिन कुछ देर में ही पानी उबलने लगा। टोटो ने बाहर निकलने की कोशिश की। बाहर उसे ठंड लगी, तो वह फिर कूदकर केतली में घुस गया। यह क्रम कुछ समय तक चलता रहा। जब दादीजी रसोई में गईं तो उन्होंने लगभग आधे उबले हुए टोटो को केतली से बाहर निकाला।

उस दिन तो टोटो जीवित ही उबल जाता।

कहा जाता है कि हर दिमाग में कुछ हिस्सा शैतानी का भी रहता है। लगता है टोटो का वह शैतानीवाला हिस्सा कुछ अधिक बढ़ा हुआ था। वह हमेशा ही चीजें बिखेरता रहता था। जब भी कोई चाचीजी या मामीजी उसके पास जातीं, उसका यही प्रयत्न रहता कि उनके कपड़ों में छेद कर दे।

एक दिन भोजन के समय पुलाव से भरी हुई प्लेट खाने की मेज के बीचोबीच पड़ी थी। जब हम पहुँचे तो देखा—टोटो दोनों हाथों से दबादब पुलाव अपने मुँह में ठूँसे जा रहा था। देखते ही मेरी दादी ने एक चीख मारी। चीख सुनते ही टोटो ने मेज से खाली प्लेट उठाकर उनकी तरफ फेंक दी। मेरी मामीजी टोटो की ओर लपकीं और छपाक-से पानी का भरा एक गिलास उनके चेहरे पर आया। जब दादाजी पहुँचे तो टोटो ने पुलाववाली प्लेट उठाई और खिड़की से बाहर कूद गया। बाहर जाने पर हमने पाया कि आँगन में एक पेड़ की डाल पर बैठा वह बड़े मजे से पुलाव खाए जा रहा था। उसे नीचे बुलाने के सारे उपाय व्यर्थ गए। अंत में शायद दादाजी की चीख का बदला लेने के लिए

उसने पुलाव की खाली बड़ी प्लेट ऊपर से नीचे जमीन पर फेंक दी। प्लेट के चकनाचूर होने पर वह खुशी से किलकारियाँ मारकर बड़ी देर तक आनंद मनाता रहा।

साफ था कि टोटो हमारे घर दादाजी के चिड़ियाघर में ज्यादा दिन नहीं टिकेगा। दादाजी ने भी इस बात को महसूस किया। घर में रोज-रोज प्लेटों, कपड़ों तथा अन्य नुकसानों को सहना आसान नहीं होता।

●

अजगर महाराज

दादाजी के चिड़ियाघर में एक जानवर ऐसा भी आया जिसे दादाजी अधिक दिनों तक नहीं रख सके। दादीजी चिड़ियों एवं अन्य पशुओं को तो किसी प्रकार सह लेती थीं, परंतु सर्प की जाति का कोई भी जीव घर में बिल्कुल नहीं चल सकता था। यहाँ तक कि जब एक बेचारा निरीह गिरगिट, जिसका नाम दादाजी ने जटायु रखा था, चिड़ियाघर में



लाया गया तो उसे देखते ही दादीजी भय के मारे बेहोश होने को हो गई थीं। इसलिए दादाजी को पहले से ही यह आशंका तो थी ही कि दादीजी अजगर का घर में रहना कभी पसंद नहीं करेंगी।

लेकिन अनोखे जीव-जंतु उनके चिड़ियाघर में न रहें, यह दादाजी को पसंद नहीं था। इसलिए एक दिन जब उन्होंने लड़कों से घिरे एक सपेरे को सड़क के चौराहे पर देखा तो एक चार फुट के अजगर को पाँच रुपए में खरीद लाने का मोह वह न छोड़ सके। लड़कों के उस समूह के सामने ही अजगर अपने कंधों पर डाले दादाजी ने स्वयं को किसी योद्धा से कम अनुभव नहीं किया होगा।

सबसे पहले एक डाल से लटके टोटो ने ही उन्हें घर में आते हुए देखा। अजगर और बंदर की पुश्तैनी शत्रुता के कारण टोटो की देह कस गई। वह चीखता हुआ घर के अंदर दौड़ा। शोर सुनकर जब दादीजी बरामदे में लपकी-लपकी पहुँचीं तो दादाजी के गले में लिपटे अजगर को देखते ही बुरी तरह घबरा गईं।

''यह तुम्हारा गला घोंट देगा!'' वह चिल्लाईं, ''इसे फौरन छोड़ आओ!''

दादाजी बोले, ''अभी तो बेचारा बच्चा है। जल्दी ही हमारे साथ रहने की इसे आदत पड़ जाएगी।''

दादीजी ने उत्तर दिया, ''इसे आदत पड़ जाएगी तो क्या हुआ? कम से कम मुझे तो इसके साथ रहने की आदत पड़ने से रही! मेरी बहन संतोष कल आ रही है। जिस क्षण उसे पता लगेगा कि घर में साँप है तो वह एक मिनट भी यहाँ नहीं रुकने की।''

दादाजी को भी मेरी तरह संबंधियों का घर पर आना अखरता था। बोले, ''तब तो बड़ी अच्छी बात है। आते ही उसे दिखा देंगे।''

दादीजी को गुस्सा चढ़ आया; बोलीं, ''रहने दो। ऐसा करना बुरा होगा।''

''लेकिन इसे आँगन में भी तो नहीं छोड़ा जा सकता। अगर मुर्गीखाने में घुस गया तो वहाँ कुछ बचने का नहीं!'' दादाजी ने तर्क किया।

दादीजी बड़बड़ाईं, ''बहुत तंग करते हो तुम तो। इसे गुसलखाने में बंद कर दो और जाकर उस आदमी को ढूँढ लाओ जिससे इसे लाए हो। उसे साथ लेते आना, यहीं से वह वापस ले जाएगा।''

दादाजी ने उसी समय उस अजगर को स्नानगृह में बंद किया और उदास-से होकर मुझसे बोले, ''तुम्हारी दादी ठीक ही कहती हैं। अजगर खाते भी बहुत हैं, सो कहीं यह टोटो की गर्दन ही न मरोड़ दे।''

वह बाजार में उस सपेरे को ढूँढने चले गए। उन्हें गए हुए दो घंटे हो गए थे और इधर दादीजी घबराहट के मारे घर के अंदर ही नहीं घुस रही थीं। वह बाहर बरामदे में ही चहलकदमी करती रहीं।

दो घंटे बाद दादाजी लौटे तो उनका थका चेहरा देखकर हमने अनुमान लगा लिया कि सपेरा उन्हें नहीं मिला।

दादीजी ने सुझाव दिया, ''तुम ही नदी के उस पार ले जाकर इसे जंगल में छोड़ आओ।''

दादाजी बोले, ''अच्छा, ऐसा ही करते हैं, लेकिन बेचारे को पहले कुछ खिला तो दें!''

उन्होंने एक मुर्गी का बच्चा मँगवाया (उन दिनों मुर्गी का बच्चा एक रुपए में मिलता था)। उसे हाथ में लेकर गुसलखाने की ओर चले। यह तमाशा देखने को उत्सुक मैं, दादीजी, हमारा बावर्ची और माली कतार बाँधकर उनके पीछे थे। दादाजी ने दरवाजा खोला और अंदर चले गए। पीछे खड़ा मैं उनकी टाँगों में से झाँकने लगा। शेष तीनों डर के मारे आगे नहीं बढ़ रहे थे। अजगर का उस कमरे में कहीं पता नहीं था।

दादाजी ने ऐलान किया, ''यहाँ तो कहीं नहीं।''

दादीजी बाहर से बोलीं, ''दूर तो नहीं गया होगा। पानी के टब के नीचे देख लो।''

लेकिन वह टब के नीचे भी नहीं था। दादाजी का ध्यान खिड़की की ओर गया। वह खुली थी। बोले, ''खिड़की तो हमने बंद ही नहीं की थी, इसी से बाहर निकल गया होगा।''

हमने उसे खोजना आरंभ किया। घर, रसोई, आँगन और मुर्गीखाना—सब देख डाले, लेकिन अजगर कहीं नहीं मिला।

अंत में दादाजी ने फैसला सुनाया—''अवश्य ही वह आँगन की दीवार लाँघकर बाहर निकल गया होगा।''

दादीजी ने चैन की साँस ली और बोलीं, ''चलो अच्छा ही हुआ। अपने-आप चला गया।''

अगले दिन मेरी मौसी संतोष तीन सप्ताह के लिए आईं। दो दिन तक तो मैं और दादाजी चिंतित रहे कि अजगर कहीं से निकल न आए, लेकिन जब तीसरे दिन भी वह कहीं नजर नहीं आया तो हमने मान लिया कि वह निकल ही गया होगा।

लेकिन उसी शाम को आँगन की ओर से आती चीख-चिल्लाहट सुनकर हम उस ओर दौड़े। मौसी संतोष बरामदे से अंदर दौड़ी आ रही थीं। हाँफते हुए वह बोलीं, ''अमरूद के पेड़ पर····उधर! मैं अमरूद तोड़ने ही वाली थी कि उसकी आँखें दिख गईं। उसकी वह आँखें! बाप रे! लगता था कि कच्चा ही चबा जाएगा।''

दादीजी ने मौसी पर यू-डी-कोलोन का जल छिड़कते हुए पूछा, ''लेकिन यह तो बताओ, दीदी, तुमने देखा क्या है?''

संतोष ने बताया, ''साँप! कम से कम बीस-पच्चीस फुट का अजगर। उसकी वह आँखें मैं कभी भूल नहीं सकूँगी।''

दादीजी की आँखें दादाजी की आँखों से मिलीं। दादाजी बोले, ''मैं जाकर उसे मार आता हूँ।'' और एक छाता उठाकर वह आँगन की ओर चले, लेकिन तब तक अजगर महाराज गायब हो गए थे।

''मौसीजी को देखकर डर के मारे भाग गया होगा!'' मैंने दादाजी से कहा।

दादाजी बोले, ''चुप! अपनी मौसी के संबंध में ऐसी बात नहीं कहते।'' लेकिन मैंने उनकी आँखों से भाँप लिया कि उन्हें मेरी बात पसंद है।

इस घटना के पश्चात् अजगर महाराज इधर-उधर प्रकट होने लगे। एक बार मौसी गद्दी ठीक करके आरामकुर्सी पर बैठने लगीं तो वह चुपचाप पालथी मारे गद्दी के नीचे बैठा हुआ था। उन्होंने अपना बोरिया-बिस्तरा उठाया और वापस चली गईं।

अजगर की खोज जारी रही।

एक दिन सुबह ही मैंने देखा कि अजगर महाराज अपना थूथन उठाए ड्रेसिंग टेबल

के दर्पण में झाँक रहे थे। मैं झट दादाजी को बुला लाया, परंतु हमारे आने तक वह जा चुका था।

उसके पश्चात् एक बार आँगन में देखा गया। एक बार माली ने सीढ़ी पर होते हुए उसे छत पर जाते देखा। फिर दूसरी बार दर्पण के सामने ही वह दिखाई पड़ा। लगता था मानो अपने प्रतिबिंब से उसे प्रेम हो गया था।

दादाजी बोले, ''उसे इतने लोग ढूँढ रहे हैं, इसीलिए उसे भ्रम हो गया है अपने विषय में।''

मुझसे नहीं रहा गया। मैंने कहा, ''शायद मौसीजी को दुबारा दर्शन देने से पहले अपना मेकअप देख रहा है कि ठीक है या नहीं!'' मुँह से बात निकलते ही मैंने अपनी जीभ होंठों से काट ली, क्योंकि मैं भूल गया था कि दादीजी पास ही खड़ी सुन रही हैं। उन्होंने मेरा एक सप्ताह का जेबखर्च बंद कर दिया।

दादाजी बोले, ''खैर, अब हमें उसकी कमजोरी पता लग गई है।''

दादीजी ने पूछा, ''क्या तुम भी दिल्लगी के मूड में हो?''

दादाजी ने एक बड़ा पिंजरा लेकर उसमें एक शीशा रखा, अजगर को पसंद आने वाले खाद्यपदार्थ रखे और एक दरवाजा खुला छोड़ दिया जो अजगर के अंदर जाने पर बंद हो सके।

मौसीजी तो चली गईं, परंतु अजगर को घर में यूँ ही तो नहीं छोड़ा जा सकता था। टोटो और मुझे, यानी एक छोटे बच्चे को खतरा तो था ही।

कुछ दिन तो कोई घटना नहीं घटी। एक दिन जब स्कूल जाने को बाहर निकला तो मैंने पिंजरे में अजगर को देखा। खाने का सारा सामान साफ था और वह कुंडली मारे थूथन उठाकर शीशे में स्वयं को निहार रहा था। पता नहीं अजगर मुस्कराए तो उसका चेहरा कैसा लगे, परंतु मुझे उस समय यही लगा कि वह स्वयं को देखकर मुस्करा रहा है।

मैंने पिंजरे का दरवाजा बंद कर दिया। दादाजी और माली ने वह पिंजरा एक ताँगे पर रखा और उसे नदी के पार ले गए। वहाँ पिंजरे का दरवाजा खोलकर उन्होंने उसे जंगल में ही छोड़ दिया।

बाद में दादाजी ने बताया, ''उस अजगर ने पिंजरे में से निकलने की कोई कोशिश ही नहीं की। वह तो वहीं शीशे के सामने थूथन उठाकर बैठ गया था। मैंने शीशे को पिंजरे से नहीं निकाला। मैंने सोचा कि एक साँप को स्वयं से प्रेम करते पहली बार देखा है तो उससे यह सुख छीनना उसके साथ अन्याय करना होगा।''

इस प्रकार दादाजी के चिड़ियाघर से अजगर महाराज का वन-गमन हुआ।

●

हमारा पालतू नारद

यह कहानी है हमारे पालतू गिरगिट की, जिसका नाम हमने नारद रख छोड़ा था। गिरगिट छिपकली से काफी मिलता-जुलता जीव है, परंतु ध्यान से देखें तो दोनों का अंतर स्पष्ट हो जाता है। एक तो गिरगिट की जीभ इसके शरीर की लंबाई जितनी होती है। दूसरे, इसके सिर पर आग बुझानेवालों की टोपी की भाँति एक ताज पड़ा रहता है।

हमारे नारद की अपनी विशेषता थी। उसकी आँखें बहुत सुंदर थीं। दोनों आँखें बिल्कुल स्वतंत्र कार्य करती थीं। एक आँख की पुतली बिल्कुल स्थिर रखकर यह अपनी दूसरी आँख आराम से सब दिशाओं में घुमा लेता था। गिरगिट की आँखें हमारी आँखों की तरह एक ही दिशा में नहीं देखतीं।

जब भी नारद पीठ के पीछे आकर खड़ा हो जाता, उसकी एक आँख घूम-फिरकर मुझ पर आकर टिक जाती। उसकी दूसरी आँख दूसरी ओर निरीक्षण करती रहती। मेरी हर हरकत को वह बड़ी सावधानी से देखता। उसके इस अविश्वास के कारण मैं उसके शरीर पर अपनी उँगलियों से खुजला देता। इससे उसे क्रोध चढ़ आता। गुस्से में आने पर वह अपना शरीर फुलाना आरंभ कर देता। फिर अपनी पिछली टाँगों पर जरा ऊपर उठ जाता। मुँह पूरा खोलकर वह अपना पूरा जोर लगाकर फुंकारता। इससे अधिक कुछ न कर पाता।

अधिकांश लोग गिरगिट को साँप की तरह खतरनाक मानते हैं, मगर यह सच नहीं है। एक बार मेरे दादा एक मित्र से मिलने गए। उन्होंने देखा कि बगीचे के दरवाजे पर कुछ हल्ला हो रहा था। कई लोग लाठियाँ-पत्थर लेकर जमा थे और शोर मचा रहे थे। कारण पूछने पर पता लगा कि एक गिरगिट एक झाड़ी पर बैठकर धूप का सेवन कर रहा था। माली कह रहा था कि यह गिरगिट बीस फुट तक अपना विष फेंक सकता है, सो

(-भर के सारे लोग इसे मारने को एकत्र हो गए। दादाजी ने समय पर पहुँचकर इसकी न बचाई और अपने साथ घर ले आए। इसका नाम नारद रख दिया गया और यह नारे साथ रहने लगा।

नारद कभी किसी प्रकार का नुकसान नहीं करता था। मैं तो इसके मुँह में अक्सर ाली डाल देता। यह अपना मुँह खोले तब तक बैठा रहता, जब तक मैं उँगली निकाल लेता। इसके सुदृढ़ जबड़ों में कई तीखे दाँत थे, परंतु वह अवश्य समझता होगा कि वे वल भोजन खाने के लिए ही हैं।

अगर मैं धैर्य से काम लेता तो वह मेरे हाथ से भोजन खाता। उसकी जीभ कब



निकलती और कब अपना भोज्य पदार्थ मेरे हाथ से ले जाती, मुझे पता भी न लगता। यह अक्सर हुआ कि मैंने अपनी दो उँगलियों में टिड्डे को पकड़ रखा है। दूसरे क्षण देखता हूँ कि वही टिड्डा नारद के जबड़ों में मौजूद है।

नारद ने हमारे घर में कभी कोई बखेड़ा नहीं खड़ा किया, लेकिन हमारे घर के पास स्थित एक छोटे बच्चों के स्कूल में अवश्य हंगामा कर दिया। घटना कुछ इस प्रकार हुई :

जब हमारे बगीचे में पपीते पक गए, तो मेरी दादीजी ने एक टोकरी में रखकर कुछ पपीते अपनी सहेली श्रीमती घोष को भेजे। श्रीमती घोष उस स्कूल की मुख्याध्यापिका थीं। नारद न जाने कब उन पपीतों में घुसकर बैठ गया था। हमारा माली वह टोकरी स्कूल में श्रीमती घोष की मेज पर रख आया। श्रीमती घोष जब दफ्तर आईं तो पपीतों के बीच से नारद महाराज बाहर निकल आए।

श्रीमती घोष ने एक चीख मारी। उस चीख को सुनकर नारद को शरम के मारे लाल हो जाना चाहिए था, परंतु गिरगिट अपने को आसपास की वस्तुओं के रंग में स्वयं को बदल लेता है। पपीतों में होने के कारण उस समय उसका रंग गहरा हरा हो गया था। चीख सुनकर श्रीमती घोष की सहायिका कुमारी डेनियल दौड़ी-दौड़ी आईं। नारद को देखकर उसने भी एक चीख मारी।

अब तो नारद सचमुच ही डर गया। वह उस समय टोकरी में से कूद गया और कमरे से बाहर जाकर, बरामदे में से फिसलते हुए एक कक्षा में घुस गया। वहाँ पहुँचकर वह झट से सामने की मेज पर चढ़ गया। बच्चों में भगदड़ मच गई। अधिकांश लड़कियाँ तो चीखती हुईं कक्षा से बाहर भागीं। कुछ साहसी लड़के नारद को पकड़ने मेज की ओर बढ़े।

परन्तु नारद एक खिड़की के रास्ते से बाहर निकल गया और बाहर बगीचे में खो गया।

दादीजी ने इस सारी घटना का ब्यौरा श्रीमती घोष से सुना, लेकिन उन्होंने यह नहीं बताया कि वह गिरगिट हमारा पालतू नारद था। स्कूल हमारे घर से कुछ दूर था, सो मैंने यह आशा छोड़ दी थी कि वह कभी लौट आएगा। परन्तु मुझे आश्चर्य हुआ जब मैंने तीसरे दिन देखा कि वह हमारे बगीचे की एक झाड़ी पर धूप-सेवन कर रहा था। मैं झट से टिड्डा पकड़कर उसे खिलाने के लिए दौड़ पड़ा।

●

एक कौआ सीजर

एक दिन मैं घर लौट रहा था तो देखा—रास्ते में ही एक नन्हा-सा कौआ पड़ा हुआ है। यह ऊपर अपने घोंसले से गिर गया होगा। यहाँ यह ताँगा अथवा बैलगाड़ी के पहिए के नीचे आकर कुचला जाएगा या कोई बिल्ली ही उठा ले जाएगी, यह सोचकर मैं घर ले आया। इसकी दशा काफी चिंताजनक थी। मुँह खुला हुआ और सिर एक ओर लटका हुआ था। मुझे आशा नहीं थी कि यह बच पाएगा। लेकिन मेरे दादाजी की मेहनत से बच गया। मैंने पेंसिल से इसकी चोंच खोली और दादीजी ने दूध में रोटी मिलाकर इसके मुँह में डाली।

बीच-बीच में हमने ब्रांडी की कुछ बूँदें भी दीं। इतनी मेहनत के बाद वह सुधरने लगा। जब कुछ ठीक हो गया तो हमने इसे छोड़ दिया। परंतु वह उड़कर बाहर नहीं गया। स्वयं को हमारे घर का सदस्य ही समझने लग गया। हमें पता नहीं चला कि वह नर है या मादा, लेकिन हमने इसका नामकरण 'सीजर' कर दिया।

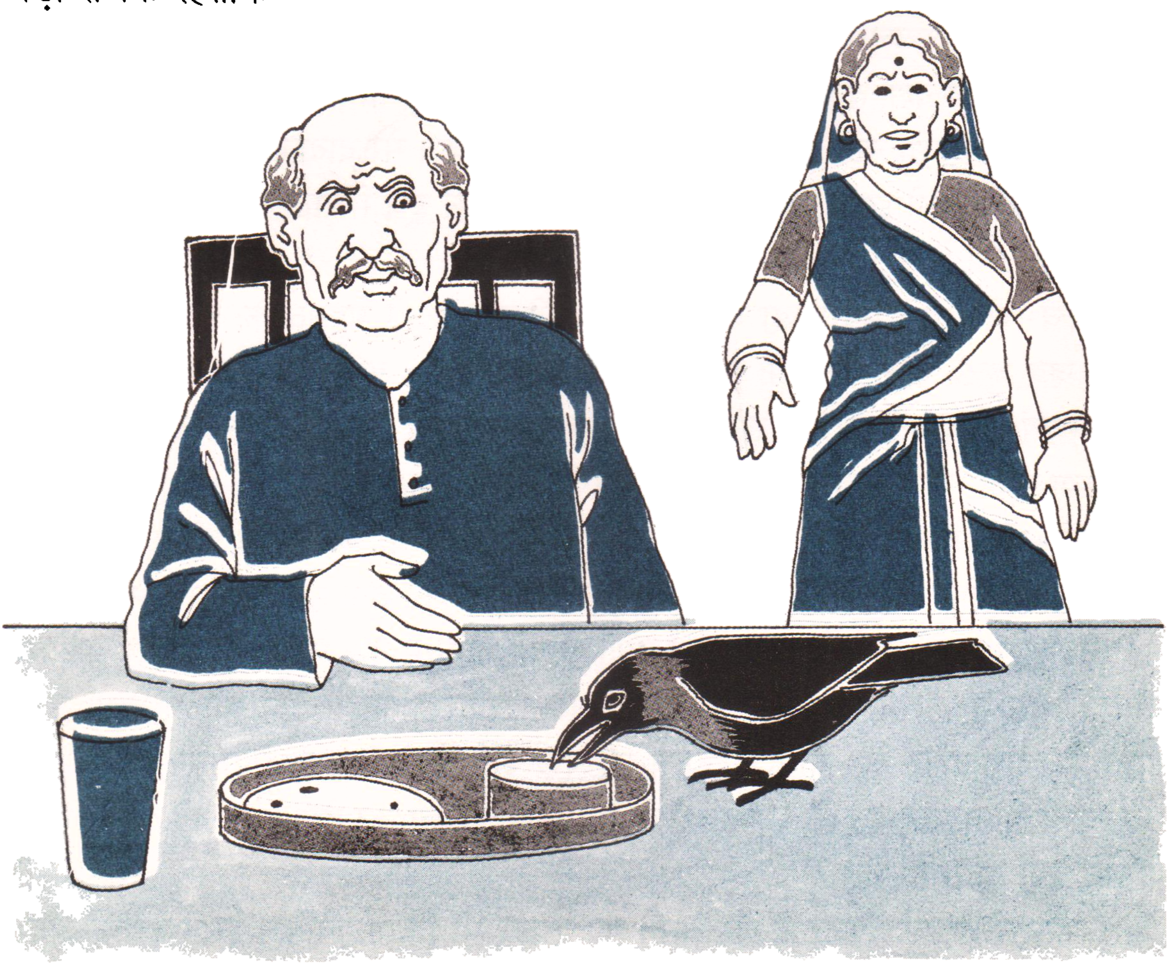
धीरे-धीरे सीजर हमारे साथ भोजन करने लग गया। वह बगीचे में भी कुछ न कुछ खा ही लेता। रोटी की मेज पर वह चैन ही न लेने देता जब तक हम उसे सूप और सब्जी न दे देते। उसकी शैतानियों के मारे तो दादीजी की नाक में दम रहता। कभी वह माचिस की डिबिया खाली कर देता, कभी चोंच मार-मारकर समाचार-पत्र की धज्जियाँ उड़ा देता, फूलदान उलट देता या हमारे कुत्ते की पूँछ पर चोंच मार उसे तंग करता।

दादीजी अक्सर कहतीं, "यह कौआ हमारा सत्यानाश कर देगा। तुम लोग इसे पिंजरे में बंद क्यों नहीं कर देते?"

हमने सीजर को पिंजरे में बंद करने का प्रयत्न भी किया, लेकिन इसने उसके अंदर

जाने पर इतना शोर किया, पंख फड़फड़ाए कि चैन पाने के लिए हमें उसे छोड़ देना पड़ा। दूसरे कई कौए हमारे घर-आँगन में आते-जाते रहते थे, लेकिन सीजर कभी उनके साथ नहीं गया। जाना तो अलग, वह उनसे अलग ही रहता, उनकी ओर उपेक्षा से देखता मानो वे किसी भिन्न जाति के हों। मेरे दादाजी कहते, ''संभव है यह जंगली कौआ हो जो शहरी कौओं से नहीं मिलते।''

हमारे साथ रहने के कारण वह स्वयं को उनसे श्रेष्ठ मानने लग गया था। वह अक्सर हमारे तोते से भी लड़ता-झगड़ता। उसके पिंजरे के ऊपर बैठकर अपनी चोंच से उसे चिढ़ाता। पिंजरे के अंदर से तोता उसे पकड़ने की कोशिश करता। दोनों का यह खेल बड़ा रोचक रहता।



सीजर धीरे-धीरे कुछ बोलना भी सीख गया, या समझें कि हम उसकी बातें समझने लग गए। खिड़की पर बैठकर वह 'हैलो, हैलो' चिल्लाता रहता। शाम को जब मैं स्कूल से लौटकर बाहर आँगन का फाटक खोलता तो वह उस स्वर को पहचानकर फौरन बाहर आता और मेरे साथ कूदता-फाँदता 'हैलो-हैलो' करता रहता। मैंने उसे अपनी बाँह पर बैठाकर एक शब्द और सिखाया 'किस-किस'। यह शब्द कहते हुए वह अपना मुँह मेरे मुँह के पास रखता।

एक बार संतोष मौसी आई तो सीजर उड़कर उनकी बाँह पर बैठकर 'किस-किस' करने लग गया। संतोष मौसी को बड़ा अच्छा लगा। लेकिन तभी सीजर की दृष्टि शायद मौसीजी के चश्मे की ओर मुड़ गई। उसने चोंच मारकर उनका चश्मा नीचे गिरा दिया। पता नहीं क्यों, हमारे पालतू जानवर हमारी संतोष मौसी को कभी माफिक नहीं आए।

दादीजी हमेशा सीजर पर बौखलाती रहतीं। अगर वह अपनी शैतानियाँ घर की चारदीवारी तक ही सीमित रखता तब भी ठीक था, लेकिन उसने आस-पड़ोस के घरों में भी जाना आरंभ कर दिया। आसपास के घरों से अक्सर पेन, पेंसिल, बालों के पिन, रिबन, चाबियाँ, शटलकॉक, दाँत के ब्रश और नकली दाँत गायब होने लगे। सीजर को दाँतों के ब्रश से विशेष लगाव था। उसने मेरे कमरे की आलमारी के ऊपर इनका ढेर एकत्र कर लिया। प्रायः हमारे हर पड़ोसी का प्रतिनिधि हमारे यहाँ उस ब्रश के रूप में उपस्थित था। उस वर्ष दाँतों के ब्रशों की बिक्री अवश्य बढ़ी होगी। हमारी दादीजी का ब्लडप्रेशर भी बढ़ गया था।

सीजर पड़ोस के ऐसे बच्चों की खोज-खबर रखता जो पास की बनिए की दुकान से मिठाई खरीदने जाते थे। उनके हाथों से मिठाई लेकर उड़ जाने में सीजर को विशेष आनंद आता। धोकर सुखाने के लिए फैलाए कपड़ों पर लगे क्लिप भी उसे बहुत पसंद थे। पड़ोसी बाजार से लौटकर देखते तो उनके गीले कपड़े मिट्टी पर नीचे गिरे होते क्योंकि इस बीच में सारे क्लिप सीजर गायब कर देता। ये क्लिप भी मेरी आलमारी पर जमा होते रहते।

लोगों के आँगन में लगी सब्जियाँ चुराने के कारण ही उसे एक बार किसी ने खींचकर एक लाठी मारी। इससे इसकी टाँग टूट गई। मैंने और दादाजी ने उसकी

मरहम-पट्टी की, लेकिन टाँग ठीक नहीं हुई। सीजर ने अपना सिर एक ओर लुढ़का दिया और बोलना बंद कर दिया। उसके पश्चात् तो दिन पर दिन कमजोर होता गया। ब्रांडी से भी इस बार कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन मैंने उसे सोफा पर अपनी दोनों टाँगें ऊपर किए मरा हुआ पाया। बेचारा सीजर! अपनी बुरी आदतों के कारण पूरा जीवन भी न जी सका।

मैंने अपने बगीचे के एक कोने में एक गड्ढा खोदा, उसमें उसकी लाश को रखकर आलमारी पर रखे सारे क्लिप और सारे ब्रश रखकर उसे दफना दिया। बेचारे ने इतने श्रम से इन्हें इकट्ठा किया था, सो उचित ही था कि मैं इन सबको उसके साथ ही दफनाता। गड्ढा भरते-भरते उसकी सारी प्यारी शैतानियाँ मेरे मस्तिष्क में एक-एक कर गुजर गईं। आखिर अपनी आँखें पोंछता हुआ उठकर मैं अपने कमरे की ओर चला गया।

दो सींगवाली परी

दादाजी की कृपा से घर में पालतू पशु-पक्षियों की कभी कमी नहीं रही, परंतु इन सब में मेरी सबसे प्रिय एक छोटी-सी काली बकरी थी जो नदी-पार सरसों के खेतों से मेरे पीछे-पीछे हमारे घर चली आई थी।

वर्षा से पहले देहरादून की यह सोंग नदी एक धारा-मात्र ही रहती है। मुझे उसमें घुसकर पानी की धारा के साथ खेतों और चाय के बगीचों में आवारागर्दी करते रहना बड़ा अच्छा लगता था। रास्ते में लाल साड़ियाँ पहने महिलाओं को चाय की पत्तियाँ तोड़ते देखता। दूर-दूर तक फैले सरसों के महकते खेतों में लोगों को आते-जाते निहारता रहता।

एक दिन मैं यूँ ही बैठा हुआ दो चमाचम सफेद बगुलों को देख रहा था। वे धारा के किनारे पर खड़े अपनी चोंच से छोटी-छोटी मछलियों का शिकार कर रहे थे। इतने में किसी ने मेरी बाँह को हिला दिया। घूमकर देखा तो पास ही मखमल-सी मुलायम काली छोटी-सी बकरी खड़ी थी। उसकी सुंदर नन्हीं-नन्हीं आँखों ने मुझे पहली दृष्टि में ही मोह लिया। उसकी माँ अथवा कोई मालिक उसके आसपास कहीं नहीं था।

उसने दुबारा अपना सिर मेरे शरीर से सहलाया। उसे कुछ देने के लिए मैंने अपनी जेबें टटोलीं। एक जेब में एक बिस्कुट पड़ा था। वह मैंने निकालकर उसको दिया। उसने आनंद से वह बिस्कुट खाया और मेरे पाँव के पास बैठ गई।

थोड़ी देर बाद मैं उठा तो वह भी उठी और मेरे साथ चलने लगी। वह अभी बच्ची ही थी, क्योंकि उसके पाँव टेढ़े-मेढ़े पड़ रहे थे।

''अपने घर जाओ!'' मैंने उससे कहा। परंतु वह मेरे चारों ओर ही नाचती रही। मैंने



सोचा कि इसका घर भी उस पार होगा, सो उसे अपने साथ-साथ आने दिया। नहर के पास पहुँचकर मैंने महसूस किया कि धारा की तेजी में उसकी टाँगें बहक जाएँगी, सो उसे अपनी बाँहों में उठा लिया। इस पार आकर मैंने उसे नीचे खड़ा कर दिया—इस आशा में कि अब वह अपने घर की ओर चल देगी, परंतु उसने अपना कोमल शरीर मेरी टाँग से रगड़ना आरंभ कर दिया।

अब मैं तेज-तेज चलने लगा। उसकी जो टाँगें मुझे कमजोर लग रही थीं, उनमें भी स्फूर्ति आ गई! मेरे साथ कूदती-फाँदती वह हमारे घर के फाटक के पास आ गई। अब और चारा भी क्या था! मैं उठाकर अंदर ले गया और उसे दादाजी की सेवा में ले जाकर खड़ा कर दिया।

कुछ ही देर बाद बरामदे में इसे एक प्लेट में दूध पीते हुए देखकर दादीजी बोलीं, ''एक और आ गई?''''मैं तुम दोनों को कह-कहकर थक गई, पर मेरी कौन सुनता है? अरे, इस घर में अब और पशु-पक्षी लाने बंद करो!''

टोटो की शैतानियों के कारण हुए नुक्सान के कारण दादीजी की यह आपत्ति सही भी थी।

आमतौर पर तो दादाजी ही पशु-पक्षी ले आया करते थे। अगर दादीजी को पता लगता कि मैं भी चिड़ियाघर में इनकी संख्या बढ़ाता रहता हूँ, तो वह मुझे फौरन पुनः बोर्डिंग में डालने की बात पर विचार करतीं। दादाजी को यह बात मालूम थी, सो ऐसे अवसरों पर वह सारा बोझ अपने कंधों पर ले लेते थे। इस समय भी उन्होंने वही किया और बोले, ''तुम्हारे लिए ही तो ले आया हूँ यह बकरी का बच्चा। बकरी का दूध हवा के दर्दों के लिए लाभदायक रहता है।''

अब दादीजी क्या कहतीं! उन्हें पता था कि अभी इस बच्ची को दूध देने योग्य होने में समय लगेगा, परंतु यह भी जानती थीं कि दादाजी ने उन सब प्रश्नों के उत्तर पहले से ही सोच रखे होंगे। हाल ही में मैंने परियों की एक कहानी पढ़ी थी, सो उसी के आधार पर मैंने इसका नाम नीलम परी रख दिया। नीलम बिल्कुल परियों की भाँति ही बिना स्वर किए इधर-उधर फुदकती थी, मानो हवा में तैर रही हो। मैंने उसके गले में एक छोटी-सी घंटी भी बाँध दी जिससे मुझे हर समय यह पता रहे कि वह कहाँ है।

रात को मेरी चारपाई के नीचे ही वह चुपचाप सो जाती। मेरे पाँव चाटकर मुझे प्रातः उठाती। उसे सवेरे-सवेरे खेतों में घूमना बेहद पसंद था और उसका साथ मुझे भी अच्छा लगता था। किसी कुत्ते को साथ रखने की अपेक्षा मुझे उसका साथ इसलिए भी अच्छा लगता कि वह मेरे आस-पास ही रहती। न तो मुझे छोड़कर दूर कहीं जाती थी और न कुत्तों की तरह हर आने-जाने अथवा रास्ते में मिलनेवालों पर भौंकती ही थी।

उसकी एक कमजोरी थी और वह थी रंग-बिरंगी तितलियाँ। वह तितलियों के पीछे दौड़ते-दौड़ते कहीं की कहीं पहुँच जाती। बकरियाँ जल्दी ही बढ़ती हैं। उसका नाम नीलम परी रख देने पर भी वह अन्य बकरियों की तरह बड़ी होती गई। उसके दो सींग भी निकल आए। उसे भूख भी खूब लगती और बगीचे में लगे मटर, शाक तथा फूल उसे विशेष रूप से अच्छे लगते।

एक दिन दादीजी ने देखा कि मटर की सारी क्यारियाँ ही गायब हैं।

मैंने नीलम को बचाने के लिए कह दिया कि फाटक खुला रह गया होगा और कोई गाय आकर खा गई। दादीजी कुछ बोलीं नहीं, लेकिन उनकी आँखों से मुझे इतना तो पता लग गया कि वह असली अपराधी को जानती हैं।

माली, जिसे हर प्रकार के पशु-पक्षी से वास्ता पड़ता ही था, दूसरे दिन दादाजी के पास आया और बोला, "मैं जब मटर की क्यारियाँ ठीक कर रहा था तो नीलम ने आकर पीछे से मुझे अपने सींग मारे। पहले इसे बाँध दीजिए, तब मैं कोई काम करूँगा।"

दादाजी हैरान हुए, क्योंकि माली ने आज तक किसी की शिकायत नहीं की थी।

दादाजी को सोचते देखकर दादीजी ने पूछा, "और उस बकरी के दूध का क्या हुआ जिसके लिए तुम नीलम को ले आए थे?"

दादाजी अपनी दाढ़ी ही खुजलाते रहे। हमें अनुमान हो गया कि शीघ्र ही कुछ होनेवाला है। परंतु जो होनेवाला है वह बिना मौसम की बरसात की तरह आ जाएगा इसकी हमें आशा नहीं थी।

नीलम अपने सींगों से काम लेना सीख गई थी, सो उसके सींगों के विषय में फलवाले, बावर्ची, पोस्टमैन आदि सबकी शिकायतें आने लगीं। नीलम की ओर पीठ करना खतरे से खाली था ही नहीं।

नीलम का दुर्भाग्य कि उन्हीं दिनों आ गई मेरी मौसी जानकी देवी। उनकी आदत थी कि हर फूल के पौधे को ध्यान से झुककर देखतीं और काफी देर तक देखती रहतीं। एक दिन बरामदे के बाहर वह एक फूल के पौधे के ऊपर झुकी हुई थीं। नीलम ने दूर से देख लिया। उसने समझा कि फूलों का कोई प्रेमी आ गया है जो उसके स्वादिष्ट फूलों को खा जाएगा। सो उसने अपनी पूरी ताकत से मौसी को वहाँ से भगा देना चाहा।

इस घटना के पश्चात् तो नीलम का हमारे यहाँ और टिकना असंभव ही था। दादाजी के बहुतेरा कहने पर भी मौसीजी ने दादाजी से मरहम-पट्टी नहीं करवाई। दादीजी ने नीलम को एक मजबूत खूँटे से बाँध दिया और माली को कहा कि बाजार ले जाकर जो भी पहला ग्राहक मिले उसी को बेच दे।

नीलम जब जाने लगी तो मैं फाटक पर पहुँच गया उसे विदा देने। उसकी आँखें आँसुओं से गीली थीं। वह मेरी ओर शिकायत-भरी दृष्टि से निहार रही थी कि मैं इस यात्रा में उसके साथ क्यों नहीं चल रहा था? उसका कातर स्वर काफी देर तक मेरे कानों में गूँजता रहा। मैं वहाँ खड़ा-खड़ा यही मनाता रहा कि उसे खरीदनेवाला कोई कोमल हृदय वाला हो, कोई ऐसा जिसके घर बकरी का मांस न खाया जाता हो।

माली ने आकर बताया कि उसने दो सौ रुपए में नीलम को बेच दिया है। बाद में मुझे उसने अलग से बताया कि नीलम की आँखों में आँसू देखकर वह उसे बेचने बाजार नहीं ले जा सका और अपने घर पर बाँध आया है। मैं बीच-बीच में उसे देखने जाता रहा।

एक दिन मैंने उसके साथ एक छोटा-सा बच्चा देखा। मुझे उस दिन की याद आ गई जब पहली बार नीलम मुझे मिली थी। इस बच्चे की खाल भी मखमल की तरह मुलायम थी। यह भी परियों की तरह हल्के-हल्के कदमों से नाच रहा था, मानो हवा में तैर रहा हो।

●

किस्सा एक बरसाती ताल का

मैंने यह कभी भी नहीं सोचा था कि हमारे घर के पिछवाड़े जो बरसात का पानी जमा होकर ताल-सा बन जाता है, उसमें दलदल और कभी-कभार भैंसों के सिवाय कुछ और भी होता होगा! मेरे दादाजी ने ही उस ताल के ऐसे पहलुओं से मेरा परिचय करवाया जो प्रकृति ने इतनी सुंदरता से सँजो रखे थे। तलैया में रहने वाले जीवों का तो वह पूरा संसार ही था।

जब दादाजी ने मुझे पहली बार ताल के संसार से परिचय करवाया, तब हम एक पुराने पीपल के वृक्ष के तले घंटा-भर बैठे रहे और पानी पर जमी हरी काई को देखते रहे। दोपहर के स्नान के लिए अभी कोई भैंस पहुँची नहीं थी। ताल का पानी शांत था। पहले दस मिनट तो हमें कुछ नहीं दिखा। फिर एक छोटा-सा काला धब्बा पानी के बीचोबीच प्रकट हुआ। जब वह धीरे-धीरे ऊपर उठा तो हमने देखा कि एक मेंढक अपना सिर उठाए बड़ी-बड़ी आँखों से हमारी ओर घूर रहा था। शायद वह देख रहा था कि हम दोस्त हैं या दुश्मन। उसने अपना शरीर पानी के अंदर ही रखा। उसे भय था कि उसका जानी शत्रु, कोई बगुला उसे ढूँढ न रहा हो। जब उसे विश्वास हो गया कि हम बगुले नहीं हैं, तो उसने यह समाचार पानी के अंदर अपने मित्रों और पड़ोसियों को दिया। देखते-ही-देखते कई सिर और आँखें पानी के ऊपर दिखने लगीं। उनके गले फूल रहे थे और 'वर्क'''वर्क'''वर्क' का राग छिड़ गया।

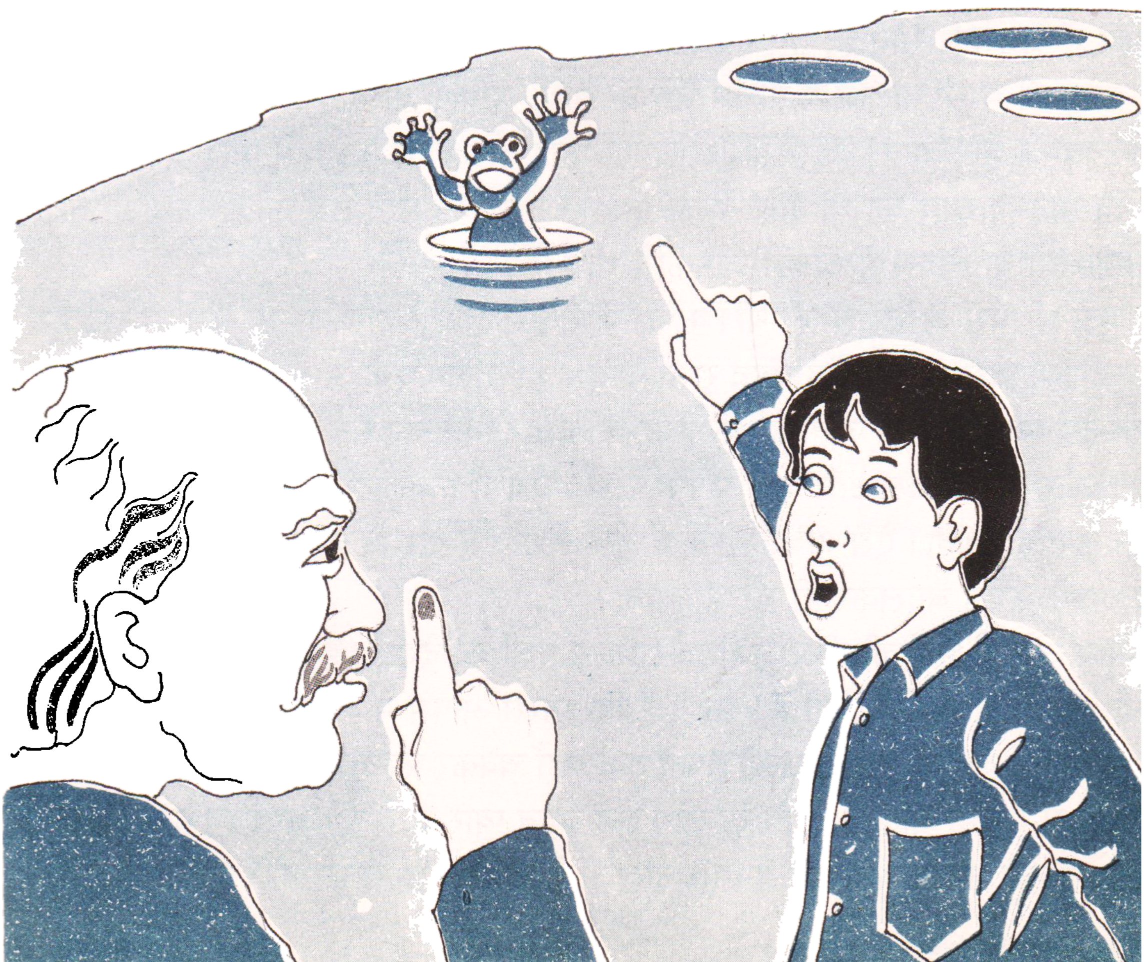
वृक्ष के पास जहाँ पानी कम था, वहाँ हमें एक छाया-सी दिखी। जब हमने उसे अपनी लकड़ी से छुआ तो वहाँ हजारों छोटे-छोटे नन्हें-नन्हें मेंढक जीवित हो उठे और एक-दूसरे को धकियाने लगे। मैंने दादाजी से पूछा, "ये खाते क्या हैं?" दादाजी ने

जवाब दिया, ''यह एक-दूसरे को ही खाते हैं। यह सुनने में बुरा लगता है, परंतु इत
बड़ी संख्या में पैदा होते हैं कि यदि ये सारे मेंढक बन जाएँ तो यहाँ से हमारे घर त
मेंढक-ही-मेंढक भर जाएँगे।''

''इनके शोर से तो दादी माँ पागल ही हो जाएँगी।'' मैंने कहा।

दादाजी सहमत हो गए। दादाजी ने कुछ वर्ष पूर्व मेंढक भी पाले थे, पर उस
कहानी अलग है।

अब मैं ताल पर अपने-आप जाने लगा। मैं अपने जूते उतारकर कीचड़वाले पानी
चला जाता था। तब तक चलता जाता, जब तक पानी मेरे घुटने तक न आ जाए। व



लगे हुए सफेद कुमुदिनी के फूलों को तोड़ लेता था। एक दिन मैं जब पहुँचा तो देखा कि भैंसें पानी में मौजूद थीं। उनका मालिक, एक लड़का जो मुझसे आयु में थोड़ा ही बड़ा होगा, वहाँ तैर रहा था। वह किनारे पर न लौटकर पास की किसी भैंस की पीठ पर चढ़ जाता और अपने साँवले शरीर से भैंस के ऊपर लेटकर गाने लग जाता।

जब लड़के ने मुझे देखा कि मैं उसकी ओर घूर रहा था तो मुस्कराया। उसके सफेद दाँत साँवले चेहरे में से चमक रहे थे। मैंने जब उसे बताया कि मैं तैरना नहीं जानता तो उसने मुझे सिखाने का वायदा किया। अपनी भैंस की पीठ पर से पानी में छलाँग लगाकर वह मेरी ओर तैरकर आया। मैं अपनी कमीज़ और हाफ पैंट उतारकर पानी में घुस गया और फूलों के आस-पास हाथ-पाँव मारने लगा।

लड़के का नाम रामू था और वह मुझे रोज दोपहर तैरना सिखाने लगा। गर्मी की दोपहर में जब सब सोते हैं, तब हम मिलने लगे।

शीघ्र ही मैं भी तालाब में तैरकर रामू के साथ, जुगाली करती हुई किसी एक भैंस के ऊपर चढ़कर बैठ जाता। यह भैंस ऐसे लगती मानो दलदल के समुद्र में कोई चट्टान हो। रामू किसान-परिवार का था और स्कूल गया ही नहीं था। परंतु उसे लोक-कथाओं तथा पशु-पक्षियों के विषय में अच्छी जानकारी थी।

मुझे भी भैंसें अच्छी लगती थीं। कभी-कभी हम दोनों अलग-अलग भैंस पर चढ़कर दौड़ लगाया करते। परंतु भैंस बहुत सुस्त जीव है। इसलिए एक आरामदेह स्थान से दूसरे आरामदेह स्थान तक ही जाती है। कभी उनका दौड़ लगाने का मन न होता तो वहीं लुढ़क पड़तीं और हम दलदल और काई में गिर जाते। जब मैं निकलता तो मेरा रंग भी काई के कारण हरा हो जाता। ऐसे अवसरों पर मैं गुसलखाने के द्वार से घुसकर नल में नहाने के बाद अपने कपड़े बदलकर ही घर में घुसता।

रामू और मैं भैंस की पीठ पर बैठकर सारस पक्षी को देखते। इनकी गर्दन लम्बी होती है और लम्बी लाल टाँगें होती हैं। कहते हैं कि सारस आपस में बहुत अच्छे मित्र होते हैं। एक को मारा जाए तो उसका साथी हफ्तों तक वहाँ चक्कर काटता है। कभी-कभी उदासी और ग़म में मर भी जाता है। गाँव के लोग इन्हें बहुत प्यार करते हैं। अगर इनके बच्चे पाले जाएँ तो अच्छे पालतू बन जाते हैं। मेरे दादाजी ने कभी कोई सारस नहीं पाला, परंतु वह

बताते थे कि किसी पालतू कुत्ते से यह कम वफ़ादार नहीं होते। अगर कोई इन्हें छेड़े तो भोंपू की तरह आवाज़ करते हैं।

रामू ने मुझे बताया कि कई पक्षी शुभ माने जाते हैं, जैसे—नीलकंठ। भगवान शिव ने मानव-जाति को बचाने के लिए विष पी लिया था और वह नीलकंठ कहलाए। इसी कारण यह पक्षी भी वंदनीय माना जाता है।

''क्या गिलहरियाँ भी वंदनीय होती हैं?'' मैंने पूछा।

रामू ने बताया, ''भगवान कृष्ण को गिलहरियाँ बहुत प्यारी थीं। वह अपनी बाँह में लेकर अपनी उँगलियों से उन्हें प्यार से दुलराया करते थे। भगवान कृष्ण साँवले थे, इसलिए जो चार गहरी लाइनें गिलहरी के शरीर पर हैं वह भगवान कृष्ण की उँगलियों के निशान हैं।''

मुझे हमेशा यही लगता कि रामू और मेरे दादाजी दोनों की राय में पशुओं और पक्षियों से हमें अच्छा व्यवहार करना चाहिए और उन्हें मारना नहीं चाहिए।

दादाजी अक्सर कहते थे, ''हमें सदैव इनका आदर करना चाहिए और पृथ्वी पर उनके जीवित रहने के अधिकार को मान्यता देनी चाहिए। अब तो सब तरफ इनका रहना दिन पर दिन मुश्किल होता जा रहा है, क्योंकि हम लोग जंगलों का सर्वनाश कर रहे हैं। पशु-पक्षियों को तो वृक्षों के न रहने पर अपना स्थान भी बदलना पड़ता है।''

रामू और मैंने कई गरम दोपहरियाँ इसी तालाब पर बिताईं। हमारी मित्रता को केवल वे भैंसें, मेंढक और सारस ही पहचानते थे। उन्होंने हमें अपने संसार का हिस्सा मान लिया था। उनका संसार वही दलदल-भरा आरामदायक ताल था। जब मैं वहाँ से चला आया तो उन साथियों और रामू ने यही समझा होगा कि मैं पक्षियों की तरह एक दिन फिर लौट आऊँगा।

●●●